अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 10-Issue 2, (April-June 2022

मैत्रेयी की स्त्री को प्रतिकार नहीं अधिकार चाहिए

शोधार्थी : सर्वेश कुमारी, (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास)
पता: यूजीएफ-1, एस.के. होम्स, अवंतिका फेस-2, गाजियाबाद, 201002

"नारी को 'आधी दुनिया' कहा जाता है। वह एक ऐसी आधी दुनिया है जो कदम-कदम पर पुरुष द्वारा अनुशासित होती है। तरह-तरह से परिभाषित होती रही है।"[1]

सारांश : मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री और उसके अधिकारों से जुड़े प्रश्नों को अपने उपन्यासों की कथा का आधार बनाया है। उनके द्वारा उठाए गए प्रश्न अत्यंत आधुनिक हैं। इनके स्त्री पात्रों में पैनी सहनशीलता और संघर्षशीलता दिखाई देती है। मैत्रेयी जी के स्त्री पात्रों की यह खूबी है कि ये केवल लड़ने के लिए अपने विरोधियों से नहीं लड़ते, इनकी इस लड़ाई के पीछे इनका कोई न कोई मकसद अवश्य होता है। मुख्यतः यह मकसद स्त्री द्वारा खुद की अस्मिता की तलाश करना और समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कर अपने अधिकारों की मांग करना होता है। उनके सभी उपन्यासों में एक जुझारू स्त्री पात्र के दर्शन अवश्य होते हैं। मैत्रेयी जी अपनी कलम से जो कुछ भी लिखती हैं उसे पढ़कर पाठक आत्ममंथन के लिए मजबूर हो जाते हैं। इनके उपन्यासों की स्त्री अपने जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझती नज़र आती है लेकिन अंत में अपने अस्तित्व को पहचानकर वह आने वाली समस्याओं का अपनी समझबूझ से दृढ़तापूर्वक सामना करती है। मैत्रेयी जी के लगभग सभी उपन्यास समाज व स्त्री के जीवन की अनेक वास्तविकताओं तथा अनेक प्रकार की समस्याओं से अनायास ही जुड़ जाते हैं। इनके उपन्यासों के स्त्री पात्र जुझारू होने के साथ-साथ कर्मठ और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हैं। मैत्रेयी जी ने अपनी साहित्य रचनाओं के माध्यम से ग्रामीण और शहरी महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया है।

संकेताक्षर: स्त्री-पुरुष, मैत्रेयी, पुरुषवादी समाज, स्त्री मुक्ति, अधिकार

स्त्री-पुरुष दोनों ही सृष्टि व समाज के मेरुदण्ड हैं। किसी एक के बिना इस समाज की यहाँ तक कि इस सृष्टि की कल्पना करना भी अतिशयोक्ति होगी। ये दोनों ही समाज के मूल आधार हैं। निर्विवाद रूप से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधों से घिरी हुई है। भारतीय परंपरा में स्त्री को शक्ति का स्वरूप माना जाता है। इसके बावजूद समाज में उसे अबला, निःसहाय और निर्बल ही समझा जाता रहा है। ऐसी विरोधाभास पूर्ण स्थिति की गूंज तो ऋग्वेद की ऋचाओं से ही परिलक्षित होती है। जिनमें कहीं तो स्त्री को अत्यंत श्रेष्ठ व त्याग की प्रतिमूर्ति बताते हुए उसे पूजनीय करार दिया गया है तो कहीं उसे मात्र वासना का मूर्त मानते हुए मनुष्य की मुक्ति के मार्ग में बाधक, तो कहीं त्याज्य और मूर्ख बताया गया है। प्राचीन काल से ही स्त्री-पुरुष में भेदभाव होता आया है। भले ही आज स्त्री ने खेतों से लेकर अंतरिक्ष तक अपना वर्चस्व क्यों न स्थापित कर लिया हो लेकिन पुरुषवादी समाज ने स्त्री को हमेशा से ही पुरुषों की अपेक्षा कमतर ही आंका है। हालांकि धर्म के अनुसार भी पत्नी के रूप में स्त्री को अर्धांगनी व सहगामिनी माना गया है और उसे उसके हर रूप में पूजनीय माना गया है। फिर भी, स्त्री को दोयम दर्जे की ही माना जाता रहा है। इसी दोयम दर्जे के ठप्पे को हटाने का प्रयास अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य लेखन के माध्यम से किया ताकि समाज में स्त्री की दशा एवं दिशा को सुधारा जा सके। हमारे समाज को यह समझना अति आवश्यक है कि स्त्री पुरुष से हीन नहीं है और उसे हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी नहीं, प्रतिद्वंदिता नहीं बल्कि सहकार चाहिए। उसका पुरुष जैसा बनने का प्रयत्न पुरुष की श्रेष्ठता को स्वीकारना नहीं उसकी अहम्मन्यता को दर्शाता है। उसका बराबरी का अधिकार मांगना या पुरुष जैसा बनने का प्रयत्न करना, यह केवल उसकी एक प्रतिक्रिया है विरोध नहीं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के स्त्री पात्र ऐसी ही प्रतिद्वंदिता और सहकार के लिए संघर्षरत नज़र आते हैं। डॉ. राजेन्द्र यादव लिखते हैं - **"मंदा की लड़ाई दुहरी है, औरत होने की और वंचितों के अधिकारों की।"[2]**

हर युग में स्त्री को किसी न किसी रूप में उसके अधिकारों से वंचित रखा गया है। इन्हीं कारणों से स्त्री हमेशा से

अनेक द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का सामना करने के लिए वाध्य रही है। वास्तव में, एक स्त्री की यही त्रासदी है। स्त्री द्वंद्व के सन्दर्भ में मानव सभ्यता तथा पुरुष प्रधान समाज स्त्री से संबंधित स्त्री-विमर्श का आईना है। इनके साहित्य में अधिकतर स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत दिखाई देती हैं। इन्होंने महिलाओं को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से सक्षम बनाने का प्रयास किया है। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में बेबाक सच्चाई प्रस्तुत की और स्त्री को स्वतंत्र विचार प्रदान कर उसे पुरुष की शोषणमूलक मानसिकता से मुक्त बनाने का प्रयास किया। समाज में सभ्यता के आवरण में दबी-छुपी हुई सच्चाई को इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भले ही यह सच्चाई कड़वी क्यों न हो।
इनके जीवन पर बुंदेलखण्ड के अंचल का प्रभाव पड़ा है। जीवन शैली के साथ-साथ इनकी लेखन शैली भी बेबाक है। स्त्री को चारों ओर से बंधन में डालने वाली पुरूष व्यवस्था से इन्हें चिढ़ है। जहाँ मनुष्य की आशाएँ, आकांक्षाएँ और जिंदगी पिसने लगे, तो वहाँ नीति-अनीति की बात को वे व्यर्थ मानती हैं। अपने लेखन साहित्य में मैत्रेयी जी हमेशा जीवन के पक्ष में खड़ी नज़र आती हैं। सत्य का प्रतिपादन ही उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है।
जिस प्रकार ये अपने अधिकारों को प्राप्त करने तथा अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने का प्रबल साहस रखती हैं उसी प्रकार अपने पात्रों को भी अपने अधिकार पाने के लिए प्रेरित करती नजर आती हैं । जिस पड़ाव पर लोग अपने जीवन का उद्देश्य खत्म हुआ मानकर चलते हैं, जीवन के ऐसे पड़ाव से इन्होंने अपने साहित्य लेखन की शुरूआत की। मात्र दस वर्ष की अवधि में ये हिंदी साहित्य जगत की एक प्रसिद्ध लेखिका के रूप में उभरकर सामने आईं। इनकी अनुभूति ने साहित्य को अनोखी क्षमता दी है। ये ग्रामीण और शहरी संस्कृति को एक साथ अपने साहित्य में उकेरने वाली लेखिका हैं। स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय का इन्होंने पूरी क्षमता के साथ विरोध किया है। बेबाक बात करना, कोई भी पर्दा न रखते हुए लेखन करना, यह एक अत्यंत कठिन कार्य है जो मैत्रेयी जी ने बड़ी ही सहजता से किया है।
मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री–विमर्श संबंधी सोच बड़ी ही व्यापक है। स्त्री मुक्ति के विमर्शवादी केंद्र में इनके विचार मौलिक हैं। वे भारतीय सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल नारी की स्वस्थ, सशक्त और समान अधिकार की छवि निर्मित करने की पक्षधर रही हैं। मैत्रेयी जी ने ग्रामीण जीवन के सामान्य चरित्रों के माध्यम से वास्तविकता को प्रस्तुत किया है। वे यह जानती हैं कि जब तक श्रम का पारंपरिक विभाजन कायम रहेगा तब तक स्त्री-मुक्ति संबंधी अधिकांश बातें मिथ्या ही रहेंगी।

स्त्री व पुरुष दोनों ही मानव समाज रूपी रथ के दो पहिए के समान हैं। इस रथ के यथावत चलते रहने के लिए दोनों पहियों का चलते रहना अति आवश्यक है। लेकिन यथार्थ में क्या समाज के प्रत्येक तबके में ऐसा संभव हो पाया है? आज भी समाज में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार व दर्जा प्राप्त नहीं हो सका है। भले ही कानूनन स्त्री को समानता का अधिकार क्यों न दे दिया गया हो परंतु समाज में आज भी स्त्री को अनेक क्षेत्रों के साथ-साथ शिक्षा व जायदाद में समानता का अधिकार नहीं मिल सका है। 'अगनपाखी' उपन्यास में देखने को मिलता है जब मास्टर जी भुवनमोहिनी की माँ से उसका एडमिशन छठी कक्षा में कराने के लिए कहते हैं तो भुवन मोहिनी की माँ साफ इंकार करते हुए मास्टर जी से कहती है कि **"हमारे घर में हम दो ही हैं। भुवन पढ़ेगी तो काम कौन करेगा? मैं घर में भी करूँ और खेत में भी?"**[3] ग्रामीण क्षेत्रों में प्रधान से लेकर अन्य अनेक पदवियों पर स्त्री के नियुक्त होने के बावजूद उनके स्थान पर पुरुष ही सत्ता संभालता है। वह नाम मात्र के लिए उस पद को धारण किए होती है। 'त्रिया हठ' उपन्यास में मामा ने सोच विचार कर मामी को खड़ा किया है क्योंकि मामी पढ़ी-लिखी नहीं है, और उनके पति को मालूम है कि अपनी पत्नी के नाम पर प्रधानी तो वे स्वयं ही चलाएंगे। जो देवेश की बातों से साफ-साफ स्पष्ट होता है - **"देख लो कि मामी चुनाव में उतरी हैं। मामा ने उतारी हैं, जानते हैं कि अनपढ़ हैं, कहाँ जाएँगी प्रधान बनकर, बात-बात में पति से पूछेंगी। उन्होंने केहर की बहू को इस पद के लिए खड़ा क्यों नहीं किया? वह तो बी.ए. तक पढ़ी है। प्राइवेट ही सही, पढ़ी तो है। मामा को डर लगा होगा कि पढ़ी-लिखी बहू अपना राजकाज खुद चलाने लगी तो उनके हाथ क्या रह जाएगा? वह तो केहर तक को न सेंटेगी।"**[4]
आर्थिक रूप से भी स्त्री पुरुष पर आश्रित है। मैत्रेयी पुष्पा का 'विजन' उपन्यास आधुनिक क्षेत्र की शहरी नारी के मनोभावों को व्यक्त करता है। इसमें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते हुए भी डा. नेहा को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार नहीं है।
धर्म की बेड़ियां भी स्त्री को ही जकड़े हुए हैं, पुरुष के लिए धर्मानुसार कोई बंधन नहीं है। देश की संस्कृति को निभाने व बनाए रखने का जिम्मा भी स्त्री को ही उठाना पड़ता है। पुरुष को इस दायित्व से दूर ही रखा गया है। हालांकि मैत्रेयी पुष्पा अपने स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री को उस हद तक ऊँचा उठाने का प्रयास करती हैं जहाँ वह अपनी पहचान अपने दम पर बना सके। भले ही इनके स्त्री पात्र अनेक प्रकार की बाधाओं से जूझते हुए क्यों ना नजर आ रहे हों, लेकिन अंत में वे सफलता अवश्य ही प्राप्त करते हैं।

मैत्रेयी जी के उपन्यासों के अध्ययन के उपरांत विदित होता है कि इनके स्त्री पात्र न तो पुरुष के पिछलग्गू हैं और न ही वे पुरुष जैसा बनने का निष्फल प्रयत्न करते हैं। यदि वे ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं, तो दोनों ही स्थितियों में उनकी अप्रतिष्ठा होती है। इनके पात्र स्त्री होकर मातृत्व और पत्नीत्व की भूमिका निभाते हुए, सर्वप्रथम मानुषी, मानवी होने का कर्तव्य निभाते हैं।

राजनीतिक अधिकारों से पहले स्त्री को ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जो उसके जीवन में स्वावलंबन और आत्मविश्वास भर सके। हमारे समाज में स्त्री को गुलाम और निम्नतर समझकर जो कायदे-कानून बनाए गए हैं सर्वप्रथम उन्हें सुधारना अतिआवश्यक है।

यदि प्रकृति ने पुरुष को शरीरिक बल अधिक दिया है तो स्त्री को दृढ़ता और शरीरिक सौंदर्य दिया है। पुरुष यदि संसार में जोश और साहस भरने के लिए बना है तो स्त्री धैर्य और चरित्र सिखाने के लिए, करुणा और प्रेम बरसाने के लिए बनी है। दोनों की भिन्न प्रकृति ही परस्पर एक दूसरे की पूरक है। इसके सामंजस्य से ही जीवन की पूर्णता संभव है। पुरुष से भिन्न होना ही स्त्री का आकर्षण है। भिन्न रहकर ही वह अपनी एक अलग पहचान बना सकती है। अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित कर सकती है। स्त्री का पुरुष से भिन्न और पुरुष से नैतिक गुणों में श्रेष्ठ होना उसके जीवन के स्वस्थ विकास के लिए सर्वाधिक जरूरी है। स्त्री यह ना भूले कि पुरुष भी स्त्री के बिना अकेला नहीं चल सकता वह भी स्वयं में उतना ही अपूर्ण है जितनी कि स्त्री, बल्कि उससे कुछ अधिक ही। इसीलिए भी क्योंकि स्त्री की छाया में वह सदा माँ के आंचल की छाया खोजता है। उसके बिना अधिक उच्छृंखल अधिक अनियंत्रित हो जाता है। जब स्त्री उसे नियंत्रित करके श्रेष्ठ मानवता की ओर अग्रसर कर सकती है तो पुरुष उससे श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। फिर स्त्री का पुरुष जैसा बनने का असफल प्रयास क्यों? अपने स्त्रीत्व को ऊँचा उठाने व अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए क्यों नहीं? सभ्यता के इतने विकास के बाद भी स्त्री एक पुरुष का संरक्षण पाए बिना दूसरे पुरुष से अपनी रक्षा करने में असमर्थ क्यों है? क्या यह स्थिति एक विडंबना नहीं? आवश्यकता है नए संदर्भों में स्त्री को नए सिरे से परिभाषित करने की अथवा मध्यकाल में खोई प्राचीन काल की परिभाषा को वापस पाने की।

स्त्री, जिसका अपना एक पृथक अस्तित्व हो। अपनी एक छवि हो। अपना एक अहम हो, गौरव हो। स्त्री का अपना स्वाभिमान, अपनी उपयोगिता, अपना स्वार्थ हो, जो न पुरुष से ही जानी जाए और न पुरुष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करे। जो पुरुष की पूरक हो, उसकी प्रेरणा हो। उसका मार्गदर्शन करने वाली हो। घर-बाहर सभी जगह उसकी सहयोगी हो, सभी क्षेत्रों में संसार और समाज के निर्माण एवं विकास में दोनों की समान भागीदारी हो। भागीदारी के लिए कार्यों का स्पष्ट विभाजन हो और परस्पर सहयोग की स्थिति भी स्पष्ट हो। स्त्री-पुरुष के संबंधों का आधार मानवीय प्रेम सम्मान और सहकार हो। यह आदान-प्रदान सहृदय, स्वस्थ और कुंठा रहित हो सके। लिंग जनित पहचान के अतिरिक्त भी स्त्री-पुरुष में सहज मैत्री संबंध विकसित किए जा सकें, तो संसार को अनेक विकृतियों से बचाया जा सकता है। निश्चित रूप से यह सब इतना सरल नहीं कि कुछ वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री और स्त्री हित चिंतक मिलकर ऐसी एक परिभाषा गढ़ें और हमारा समाज तत्काल उस पर अमल करने लगे। परंपरागत संस्कार चाहे कितने भी रूढ़ होकर अपना अर्थ खो चुके हैं, लेकिन उनकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं। बिना किसी योजनाबद्ध प्रयास के उन्हें बदलने में शताब्दी भी कम पड़ जाती हैं। फिर भी संसार में असंभव कुछ नहीं है। यद्यपि परिवर्तन की गति इतनी तेज है और चारों ओर से हवाएं स्वयं ही धक्के दे देकर कुछ संस्कारों की जड़ें हिलाती रहती हैं। समाज में स्त्री की दशा को यदि सुधारने का कार्य किया जाए तो यह काम अपेक्षाकृत आसान हो गया है। शर्त यही है कि प्रयास सुनियोजित हो और स्त्री

पुरुष विद्वानों के सम्मिलित चिंतन के माध्यम से किया जाना चाहिए।

समाज में एक परंपरागत मान्यता प्रचलित रही है कि पुरुष और स्त्री में समानता नहीं हो सकती। इसे काफी हद तक सत्य माना जाता है जबकि दूसरी और सच्चाई यह है कि अकेले पुरुष से यह समाज नहीं चल सकता। समाज के विकास के लिए पुरुष के साथ स्त्री की भागीदारी किसी भी रूप में कमतर नहीं आंकी जा सकती। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा श्रृंखला की कड़ियाँ में लिखती हैं - **"भारतीय नारी जिस दिन अपने संपूर्ण-प्राण प्रवेश से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं, न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है। समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकार निश्चित करता रहता है। किंतु अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यता भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। कहीं उसमें साधारण दयनीय था और कहीं असाधारण विद्रोह विद्रोह है, परंतु संतुलन से उसका जीवन परिचय नहीं।"**[5] इस संदर्भ में मानव सभ्यता और समाज का यह संबंध हमें एक महत्वपूर्ण डगर पर ले जाता है। यह डगर ही स्त्री विमर्श और स्त्री तथा पुरुष के

अध्ययन की पृष्ठभूमि का रास्ता है। यह तो स्पष्ट है कि समाज में विभिन्न कार्यों में जहाँ बदलाव हुए वहाँ स्त्री के पक्ष में बहुत कुछ नहीं आया। केवल इतना ही देखा गया है कि प्रत्येक काल में कुछ ग्रंथों, व्यक्तियों और विचारकों में स्त्री के प्रति पूजा-भाव से लेकर सहानुभूति तक को प्रोत्साहित किया। किसी-किसी कार्य में यह भी कहा गया कि स्त्री को मानवीय रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए किंतु वहाँ भी सारा मामला बराबरी की वकालत पर आकर ही होता है। व्यावहारिक रूप में इसका कोई परिणाम देखने को नहीं मिलता। स्त्री को उसके अधिकार दिये जाने का प्रयत्न कहीं नहीं किया जाता वरन इसके विपरीत धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में स्त्री के संबंध में जिस व्यवहार ने स्पष्ट रूप धारण किया वह निश्चित सिद्धांत बनने की ओर बढ़ता नज़र आता है। इससे ही स्त्री के शोषण पर भी मुहर लगती है।

अत: कहा जा सकता है कि स्त्री सबसे पहले तो एक व्यक्ति है, जिसके पास दया, ममता, श्रद्धा, कोमलता, सुंदरता, मातृत्व, आत्मसमर्पण, स्नेहमयता, दानशीलता, क्षमाशीलता, सहनशीलता आदि सभी माननीय गुण विद्यमान है और वह सृष्टि के मूल अर्थात गर्भाशय को लिए आदि शक्ति है, जिसके अभाव में न संसार का उद्भव और न विकास ही संभव है, और जिसके बिना एक पुरुष कभी भी संपूर्ण नहीं हो सकता।

अतः अब एक मात्र यही रास्ता बचता है कि स्त्री स्वयं सामने आए। अपने लिए उसे स्वयं ही लड़ना होगा। उसे स्वयं नेतृत्व भी करना होगा। स्त्री यदि पुरुष के समान अधिकार पाना चाहती है तो उसे छुईमुई, नाजुक, शर्मीली नार, त्यागमयी, तपस्विनी, पति पर कुर्बान होने वाली, सती-साध्वी की भंगिमा तोड़कर स्त्री सुचिता, पतिव्रता की तोता-रटंत मानसिकता त्यागकर और उपभोक्ता-सामग्री सी बाजार में बिकाऊ वस्तु की तरह चकाचौंध भरी मोहक दुनिया नकारकर - एक मेहनतकश, अन्याय न सहने वाली स्वावलंबी, स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर और अपने जनतांत्रिक अधिकारों का उपभोग करने वाली स्त्री की भूमिका अदा करनी होगी। न देवी की न दासी की बस एक साथी, एक हमदम, एक दोस्त, एक सहयात्री, एक सहयोगी, एक समझदार, जिम्मेदार नागरिक की आकांक्षा पालनी होगी। स्त्री-दृष्टि का महत्व प्रतिष्ठित करना होगा। जो मनु की संहिता नहीं, मानवीय संहिता की प्रतिपादक होगी। उसका अभीष्ट पूजा नहीं, सम्मान और समानता का दर्जा हो। पुरुष द्वारा स्त्री को मात्र एक देह के रूप में ना देखा जाए बल्कि उसे एक स्वतंत्र व्यक्तित्व ही माना जाए, तभी स्त्री और पुरुष का भौतिक भेद मिट सकेगा और व्यक्ति और विश्व दोनों के निर्माण में दोनों ही समान भागीदार होंगे।

अतः स्त्री-पुरुष में नि:शक्तता का भाव दूर कर उनमें आत्मविश्वास का संचार करने की आवश्यकता है। जिसे उनके तथा समाज के विकास का एक महत्वपूर्ण घटक कहा जा सकता है। जिसके आधार पर हमारे देश की आधी आबादी का ऐसा गठन होगा जो स्वयं को पुरुषों से हीन नहीं मानेगा और ना ही पुरुष की बराबरी करने में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करेगा। बल्कि पुरुष का पूरक बन देश को प्रगति की ओर अग्रसर करेगा।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने समग्र साहित्य में स्त्री के मनोभावों को अभिव्यक्ति दी तथा पिछड़ेपन की शिकार महिलाओं को नायिका बनाकर उनके मर्म को व्यक्त किया। अपनी सपाटबयानी के लिए प्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री को केंद्र में रखकर उपन्यास और कहानियों की रचना की है। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित समग्र साहित्य स्त्री जीवन के व्यापक फलक को प्रस्तुत करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में स्त्री के प्राचीन और आधुनिक दोनों रूपों को नवीन चेतना के साथ प्रस्तुत किया है। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों में आंचलिकता का समावेश मिलता है। मैत्रेयी पुष्पा के अधिकांश उपन्यासों की केंद्र बिंदु ग्रामीण स्त्री ही है जो राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन मूल्य स्थापित करना चाहती है। इनका साहित्य संबंधी दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक है। ये स्त्री को आत्मनिर्भर व अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना चाहती हैं।

अतः कहा जा सकता है कि इन्होंने भारतीय परिवेश में स्त्री की स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। हमारे समाज में पुरुष को अधिक महत्व दिया जाता है। अनेक लोग स्त्री के अधिकारों की वकालत करते तो नजर आते हैं लेकिन उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है। यहाँ तक कि धार्मिक स्थानों की आड़ में भी स्त्री का यौन—शोषण किया जाता है। स्त्री को कभी एक वस्तु की भांति जुए में हारा जाता है, तो कभी उसका हरण कर लिया जाता है। यहाँ तक कि समाज में स्त्री के साथ ये सब अनहोनियां महाभारत तथा रामायण के समय में भी होती आई हैं।

अनपढ़ स्त्री का समाज के हरेक तबके द्वारा नाना प्रकार से शोषण किया जाता है साथ ही पढ़ी लिखी स्त्री का शोषण करने से भी यह समाज वाज नहीं आता। 'विजन' उपन्यास में डा. नेहा का उसके पति और ससुर द्वारा मानसिक शोषण किया जाता है। उसे उसके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। जीवन यात्रा के प्रत्येक पल में स्त्री किसी न किसी रूप में पुरुषों द्वारा शोषित होती रही है। मैत्रेयी जी ने अनपढ़ उर्वशी से लेकर पढ़ी-लिखी डा. नेहा व डा. आभा के संघर्ष व द्वंद्व को चित्रित कर यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्री चाहे किसी भी समाज में रहने वाली व काम करने वाली क्यों न हो समाज में किसी न किसी रूप में उसका शोषण किया ही जाता है। कभी उसकी मजबूरी का फायदा उठाते हुए तो कभी जोर-जबरदस्ती से।

आधुनिक काल में स्त्री-विमर्श बड़ी ही तेजी से उभरने वाली प्रक्रिया रही है। आज जब स्त्री

उद्योगपतियों की कतार में खड़ी है। ट्रेन चलाने से लेकर हवाई जहाज तक चलाने में सक्षम हो गई है, यहाँ तक कि अंतरिक्ष में भी उसके कदम पड़ चुके हैं। आज स्त्री प्रशासन से लेकर सेना तक की बागडोर बखूबी संभाले हुए है। सरहद पर भी स्त्री की काबलियत व साहस ने अपने पैर जमा लिए हैं। तो फिर भारतीय गाँव की स्त्री किस प्रकार इन सबसे पीछे रह सकती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के स्त्री पात्रों में भी अपने दम पर कुछ कर गुजरने की हिम्मत, साहस, लगन व जूनून है। हालांकि इनके उपन्यासों की स्त्री कहीं-न-कहीं परिवार को बचाने व रिश्तों को समेटने के द्वंद्व में उलझी हुई प्रतीत होती है फिर भी वह अपने लिए कुछ कर गुजरने की चाह रखती। इनके उपन्यास की सारंग नैनी जैसी स्त्री पात्र अपने पति व समाज के विरुद्ध जाकर चुनाव में खड़े होने का दमखम रखती है। यहाँ तक कि अपने मन की तृप्ति व संतुष्टि के लिए वह मास्टर के साथ संबंध भी बना लेती है। इनके उपन्यासों की स्त्री परम्पराओं, रूढ़ियों को तोड़ती हुई नज़र आती है। 'झूलानट' की शीलो जैसी अनपढ़ स्त्री बछिया करने जैसी रूढ़ि-परंपराओं को तोड़ती नजर आती है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, मानसिक, राजनीतिक जैसे अनेक द्वंद्वों से घिरी होने के बावजूद वह इस परिधि से बाहर नहीं निकल पाती है। संभवत: मैत्रेयी जी की स्त्री अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों के प्रति भी जागरूक नजर आती है। वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में विश्वास रखती है।

इन्होंने अनेक समस्याओं से जूझती स्त्री का यथार्थ चित्रण किया है। इनके उपन्यासों की स्त्री दिन-प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार से घरेलू हिंसा का शिकार बन ही जाती है और परिवार को बचाने व रिश्तों को समेटने की जद्दो-ज़हद में उलझी होने के साथ-साथ अपने अधिकारों के लिए भी लड़ती हुई नजर आती है।

इनके उपान्यासों की स्त्री घर में, खेत में, कार्यालय में, समाज में, तथा राजनीति में अनेक प्रकार के अन्यायों तथा अत्याचारों का सामना करती है लेकिन हार कभी नहीं मानती। वह नाना प्रकार से रूढ़ि-परंपराओं तथा अंधविश्वासों से घिरी होने के साथ-साथ कहीं-कहीं पर उन्हें तोड़ती हुई भी नजर आती है। शिक्षित न होना भी स्त्री की एक प्रमुख समस्या रही है। समाज में स्त्री की अनेक प्रकार से निंदा तथा आलोचना होती रही है जिसके कारण स्त्री को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। आर्थिक रूप से सक्षम न होने के कारण भी स्त्री को अनेक समस्याओं और द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

विधवा स्त्री भी अपने जीवन में अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करते हुए समाज में अनेक प्रकार से प्रताड़ित की जाती है तथा अनेक प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दी जाती है। यहां तक कि कभी-कभी तो उसकी जीवन लीला ही समाप्त कर दी जाती है। जिसका जीता जागता उदाहरण 'चाक' उपन्यास की रेशम है। जिसे उसके जेठ द्वारा उसके गर्भ में पल रहे बच्चे के साथ ही मार दिया जाता है और उसकी मृत्यु को एक दुर्घटना का नाम दे दिया जाता है।

आधुनिक काल में स्त्री-विमर्श बड़ी ही तेजी से उभरने वाली प्रक्रिया रही है। आज जब स्त्री उद्योगपतियों की कतार में खड़ी है। ट्रेन चलाने से लेकर हवाई जहाज तक चलाने में सक्षम हो गई है, यहाँ तक कि अंतरिक्ष में भी उसके कदम पड़ चुके हैं। आज स्त्री प्रशासन से लेकर सेना तक की बागडोर बखूबी संभाले हुए है। सरहद पर भी स्त्री की काबलियत व साहस ने अपने पैर जमा लिए हैं, फिर भी, कहीं न कहीं वह अपने अधिकारों के लिए लड़ती जूझती हुई नजर आती है। भले ही सरकार ने स्त्रियों को जायदाद में बराबर का हिस्सेदार बना दिया है, लेकिन हकीकत कुछ और ही है। अधिकार मांगने पर आज भी समाज में एक बहन-बेटी से सभी रिश्ते नाते तोड़ दिए जाते हैं। अपना हक मांगने पर 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास में कम्मो को उसके भाई द्वारा ही गोली मार दी जाती है। "**यों तो कम्मो अपने पिता की संपत्ति में से हिस्सा लेने की बात चलाने के बाद मायकेवालों के दिलों से दूर हो गई थी। मगर त्यौहार-लोकाचार तो अपने यहाँ संस्कृति का रूप हैं। परंपरा का सुंदर रूप इनसे ही दिखता है। राखी-टीका करके मन में आए मैल भी धुल जाते हैं, यह मान्यता है। रूठे-बिछुड़े इसी बहाने मिल जाते हैं, लोगों का विचार है।.....कम्मो नारियल भेंट करने लगी कि भाई विमल ने जेब से कुछ खींच लिया। पलक झपकते ही गोलियाँ चला दीं। पिस्तौल के ताबड़तोड़ फायर बहन की देह पर गुजर रहे थे। खूनी मानसून जमकर बरसा। जहाँ चौक पूरा गया था, वहाँ खून के परनाले बहने लगे।**"[6]

अत: समाज में स्त्रियों के प्रति जो घृणित प्रवृत्ति का विकास होता जा रहा है, उससे समाज को उबारने की आवश्यकता है। यद्यपि आज की स्त्री शिक्षित है, उसमें आर्थिक स्वावलंबन भी है तथा संचार के साधनों के कारण उनमें जागरूकता का भी विकास हुआ है। आज वह एक कसमसाहट की स्थिति में है, जो कभी-कभार प्रकट भी हो जाती है। लेकिन आज भी अनेक अवसरों पर स्त्रियों की सही राय पुरुषों के अहम को कहीं-न-कहीं चोटिल कर देती है। समाज भी अभी तक परम्परात्मक ही है और पुरुष सत्ता प्रेमी है। यही स्थिति स्त्री-पुरुषों में वैचारिक भिन्नता को जन्म दे देती है। विचारों की भिन्नता स्वाभाविक है लेकिन यही विचार भिन्नता आपस में

एक दूसरे के अहम से टकराती है और पति-पत्नी के बीच तनाव की स्थिति पैदा करती है। 'चाक' उपन्यास में सारंग और रंजीत के बीच के मतभेद इसका जीता-जागता उदाहरण हैं।

इसके लिए अब केवल एक ही रास्ता शेष रह जाता है कि स्त्री स्वयं सामने आए। उसे स्वयं ही लड़ना होगा, स्वयं नेतृत्व भी करना होगा। स्त्री यदि पुरुष के समान अधिकार पाना चाहती है तो उसे 'छुई-मुई', नाजुक, शर्मीली नार', आज्ञाकारी, त्यागमयी, तपस्विनी, पति पर कुर्बान होने वाली, सती-साध्वी, की लीक को तोड़कर, स्त्री-शुचिता, पतिव्रता की तोता-रटंत मानसिकता को त्यागकर और उपभोक्ता सामग्री-सी बाजार में बिकाऊ वस्तु की तरह चकाचौंध भरी, मोहक दुनिया को नकारकर एक मेहनतकश, अन्याय न सहने वाली, स्वावलम्बी, स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर तथा अपने जनतांत्रिक अधिकारों का उपभोग करने वाली स्त्री की भूमिका अदा करनी होगी। न देवी की, न दासी की – बस एक साथी, एक हमदम, एक दोस्त, एक सहयात्री, एक सहयोगी, एक समझदार और जिम्मेदर नागरिक की आकांक्षा पालनी होगी। स्त्री-दृष्टि का महत्व प्रतिष्ठित करना होगा जो मनु की संकिता नहीं, मानवीय संहिता की प्रतिपादक होगी। उसका अभीष्ट पूजा नहीं, सम्मान और समानता का दर्जा होगा।

स्पष्टत: कहा जाए तो स्त्री व पुरुष में से एक का भी अभाव हो जाने पर आधा संविधान तहस-नहस हो जाएगा। जिसके अभाव में एक सभ्य समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्त्री व पुरुष इस समाज रूपी रथ के दो पहियों के समान ही हैं, जिसका एक के भी अभाव में चल पाना असम्भव है, इस पुरुष प्रधान समाज को यह भली-भांति समझ लेना चाहिए, तभी समाज का पूर्ण व सही दिशा में विकास संभव हो सकेगा।

अत: स्त्री सबसे पहले तो एक व्यक्ति है, जिसके पास दया, ममता, श्रद्धा, मातृत्व, आत्मसमर्पण, स्नेहमयता, दानशीलता, क्षमाशीलता, सहनशीलता आदि सम्पूर्ण मानवीय गुण हैं और वह सृष्टि की मूल अर्थात् गर्भाशय को लिए आदि शक्ति है, जिसके अभाव में न संसार का उद्भव और विकास संभव है और न ही पुरुष सम्पूर्ण है। समाज में जब तक स्त्री को समानता का अधिकार नहीं दिया जाता तब तक समाज का पूर्ण रूप से विकास सम्भव नहीं है।

संदर्भ

1. डॉक्टर रोहिणी अग्रवाल, हिंदी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्रकाशन - दिल्ली (भूमिका से)
2. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, राजेन्द्र यादव की भूमिका में उद्धृत
3. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, वाणी प्रकाशन, पृ. सं -12
4. मैत्रेयी पुष्पा, त्रिया हठ, किताबघर प्रकाशन, पृ. सं -
5. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां (हिंदी) भारतीय साहित्य संग्रह, अभिगमन तिथि: 31 मार्च, 2013
6. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. - 218-219